युग के माध्यम से भारतीय साहित्य

- प्राचीन भारतीय साहित्य
- पुराण
- शास्त्रीय संस्कृत साहित्य
- पालि और प्राकृत में साहित्य
- प्रारम्भिक द्रविड़ साहित्य
- मध्यकालीन साहित्य
- भक्ति में कवयित्रियां
- मध्यकालीन साहित्य की अन्य् प्रवृत्तियां
- आधुनिक भारतीय साहित्य
- राष्ट्रीयता का आविर्भाव
- राष्ट्रीयता, पुनर्जागरणवाद और सुधारवाद का साहित्य
- भारतीय स्वच्छंदतावाद
- महात्मा गांधी का आगमन
- प्रगतिशील साहित्य
- आधुनिक रंगशाला का निर्माण
- आधुनिकता की तलाश
- स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय साहित्यिक परिदृश्य
- दलित साहित्य
- पौराणिकता का प्रयोग
- समकालीन साहित्य

प्राचीन भारतीय साहित्य

भारतीय साहित्य में वह सब शामिल है जो 'साहित्य' शब्द में इसके व्यापकतम भाव में आता है: धार्मिक और सांसारिक, महाकाव्य तथा गीत, प्रभावशाली एवं शिक्षात्मक, वर्णनात्मक और वैज्ञानिक गद्य, साथ ही साथ मौखिक पद्य एवं गीत । वेदों में (3000 ईसा पूर्व-1000 ईसा पूर्व) जब हम यह अभिव्यक्ति देखते हैं, 'मैं जल में खड़ा हूं फिर भी बहुत प्यासा हूं', तब हम ऐसी समृद्ध विरासत से आश्चर्यचकित रह जाते हैं जो आधुनिक और परम्परागत दोनों ही है । अत: यह कहना बहुत ठीक नहीं है कि प्राचीन भारतीय साहित्य में हिन्दू, बौद्ध और जैनमतों का मात्र धार्मिक शास्त्रीय रूप ही सम्मिलित है । जैन वर्णनात्मक साहित्य, जो कि प्राकृत भाषा में हैं, रचनात्मक कहानियों और यथार्थवाद से परिपूर्ण है ।

यह कहना भी ठीक नहीं है कि वेद धार्मिक अनुष्ठानों और बलिदानों में प्रयुक्त पवित्र पाठों की एक शृंखला हैं । वेद उच्च साहित्यिक मूल्य के तत्वत: आदिरूप काव्य हैं । ये पौराणिक स्वरूप के हैं और इनकी भाषा प्रतीकात्मक है । पौराणिक होने के कारण इनके कई-कई अर्थ हैं और इसलिए ब्रह्मज्ञानी अपने अनुष्ठान गढ़ता है, उपदेशक अपना विश्वास तलाशता है, दार्शनिक अपने बौद्धिक चिन्तन के सुराग ढूंढता है और विधि-निर्माता वेदों की आदिरूपी सच्चाइयों के अनुसार सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन-शैली का पूर्वाकलन करते हैं ।

वैदिक कवियों को ऋषि कहते हैं, वे मनीषी जिन्होंने अस्तित्व के सभी स्तरों पर ब्रह्माण्ड की कार्यप्रणाली की आदिरूपी सत्यता की कल्पना की थी। वैदिक काव्य के देवता एक परमात्मा की दैवी शक्ति की अभिव्यक्ति का प्रतीक है । वेद यज्ञ को महत्व देते हैं । ऋग्वेद का पुरुष सूक्त (10.90) समग्र दृष्टि का प्रकृति की दैवी शक्तियों द्वारा प्रदत्त यज्ञ के रूप में वर्णन करता है । व्युत्पत्ति की दृष्टि से, यज्ञ का अर्थ है ईश्वर की आराधना, समन्वय और बलिदान । ईश्वर-दर्शन, समन्वय और बलिदान रूपी ये तीनों तत्व मिल कर किसी भी सृजनात्मक कृत्य के लिए एक मूलभूत आधार उपलब्ध कराते हैं। यजुर्वेद का संबध मात्र यज्ञ से नहीं है । यह मात्र बलिदान नहीं होता है, बल्कि इसका अर्थ सृजनात्मक वास्तविकता भी है । ऋग्वेद के मंत्रों का कुछ रागों के अनुसार अनुकूलन किया गया है और इस संग्रह को सामवेद कहते है और अथर्ववेद मानव समाज की शान्ति तथा समृद्धि के बारे में है तथा मनुष्य के दैनिक जीवन की इसमें चर्चा की गयी है ।

वैदिक अनुष्ठान 'ब्राह्मण' नामक साहित्यिक पाठों में संरक्षित है । इन व्यापक पाठों की अन्तर्वस्तु का मुख्य विभाजन दुगुना है-वैदिक अनुष्ठान के अर्थ के बारे में आनुष्ठानिक आदेश तथा चर्चाएं और वह सब कुछ जो इससे संबद्ध है । आरण्यक या वन संबंधी पुस्तकें अनुष्ठान का एक गुप्त स्पष्टीकरण प्रस्तुत करती है, ब्राह्मण की दार्शनिक चर्चाओं में इनका उद्गम निहित है, अपनी पराकाष्ठा उपनिषदों में पाती है और ब्राह्मण के आनुष्ठानिक प्रतीकात्मकता और उपनिषदों के दार्शनिक सिद्धान्तों के बीच संक्रमणकालीन चरण का प्रतिनिधित्व करती हैं । गद्य और पद्य दोनों ही रूपों में लिखे गए उपनिषद दार्शनिक संकल्पनाओं की अभिव्यक्ति मात्र हैं । शाब्दिक दृष्टि से इसका अर्थ यह हुआ कि अध्यापक के अधिक निकट बैठे हुए विद्यार्थी तक पहुंचाया गया ज्ञान । वह ज्ञान जिससे समस्त अज्ञान का विनाश होता है । ब्राह्मण के साथ-साथ स्वयं की पहचान करने का ज्ञान, उपनिषद वेदों के अन्त हैं । यह ऐसा साहित्य है जिसमें प्राचीन मनीषियों ने यह महसूस किया था कि अन्तिम विश्लेषण में मनुष्य को स्वयं को पहचानना होता है ।

'रामायण' (1500 ईसा पूर्व) और 'महाभारत' (1000 ईसा पूर्व) भारतीय जनसाधारण की जातीय स्मरण-शक्ति का भण्डार हैं। रामायण के कवि वाल्मीकि को आदिकवि कहते हैं और राम की कहानी का महाभारत में यदा-यदा वर्णन मिलता है । इन दोनों महाकाव्यों की रचना करने में अत्यधिक लम्बा समय लगा था और गायकों तथा कथावाचकों द्वारा इन्हें मौखिक रूप से सुनाने के प्रयोजनार्थ एक कवि ने नहीं बल्कि कई कवियों ने अपना योगदान दिया था । दोनों ही महाकाव्य जनसाधारण के हैं और इसलिए लोगों के एक समूह के स्वभाव तथा मन का चित्रण करते हैं । ये दोनों ही महाकाव्य लौकिक/सांसारिक सीमित दायरा तय नहीं करते हैं बल्कि इनका एक वैश्विक मानव संबंध होता है । रामायण हमें यह बताती है कि मनुष्य किसी प्रकार से ईश्वरत्व को प्राप्त कर सकता है क्योंकि राम ने ईश्वरत्व का सदाचारी कृत्य द्वारा प्राप्त किया है । रामायण हमें यह भी बताती है कि मानव जीवन के चार पुरुषार्थ यथा धर्म (सदाचार या कर्त्तव्य), अर्थ(सांसारिक उपलब्धि, मुख्य रूप से समृद्ध), काम (सभी इच्छाओं की पूर्ति), और मोक्ष (मुक्ति) को किस प्रकार से प्राप्त किया जाए । भीतर ही भीतर, यह स्वयं को जानने की एक तलाश है । रामायण में 24000 श्लोक हैं तथा यह सात पुस्तकों, जिन्हें काण्ड कहते हैं, में विभाजित है तथा इसे काव्य कहते हैं जिसका अर्थ यह हुआ कि यह मनोरंजन करने के साथ-साथ संवेदन व अनुदेश भी देती है । महाभारत में 1,00,000 श्लोक हैं तथा यह दस पुस्तकों, पर्व में विभाजित हैं, इसमें कई क्षेपक जोड़े गए हैं जिन्हें इतिहास पुराण (पौराणिक इतिहास) कहते हैं । दोनों लम्बे हैं, निरन्तर वर्णनात्मक हैं । राजा राम का दैत्यराज रावण से युद्ध होता है । रामायण में वाल्मीकि युद्ध का वर्णन करते हैं क्योंकि रावण ने राजा राम की पत्नी सीता का हरण किया था और लंका (अब श्रीलंका) में बन्दी बना कर रखा था । राम ने बानर सेना और हनुमान की सहायता से सीता को बचाया था । रावण पर राम की विजय सत्य की असत्य पर विजय की प्रतीक है । वैयक्तिक स्तर पर यह प्रवृत्ति अपने भीतर असत्य और सत्य के बीच चल रहा एक युद्ध है।

महाभारत के समय में सामाजिक संरचना के परिणामस्वरूप, राज्यसिंहासन के उत्तराधिकारी को ले कर अब मानव के बीच, पाण्डव और कौरवों के बीच, एक ही राजसी कुल के परिवार के सदस्यों के बीच युद्ध होता है । व्यास (व्यास का अर्थ है एक समाहर्ता) द्वारा रचित महाभारत एक पौराणिक इतिहास है क्योंकि इतिहास यहां पर किसी घटित घटना मात्र का द्योतक नहीं है, बल्कि उन घटनाओं को द्योतक है जो सदैव घटित होती रहेंगी तथा ये अपनी पुनरावृत्ति करती रहेंगी । यहां भगवान कृष्ण पाण्डवों की सहायता करते हैं, भगवान कृष्ण को ईश्वरत्व का रूप दिया गया है और कृष्ण को बुराई की ताकतों के विरुद्ध संघर्ष करने में मनुष्यकी सहायता करने में अंतरिक्षीय इतिहास के चक्रों में अवतरित होते हुए दिखाया गया है । वे युद्ध प्रारम्भ होने से ठीक पूर्व पाण्डव राजकुमार अर्जुन को भागवत गीता (प्रभु का गीत) सुनाते हैं जो युद्ध करने की इच्छा नहीं रखते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि युद्ध में विजय वांछनीय नहीं है । इस प्रकार से कार्रवाई बनाम अकर्मण्यता की, हिंसा बनाम अहिंसा की समस्याओं और अन्तत: धर्म के बारे में महाकाव्य स्तर पर वाद-विवाद प्रारम्भ होता है । धर्म की एकीकृत झलक को प्राथमिक रुप से दिखाने के लिए गीता को महाभारत में सम्मिलित किया गया है । धर्म का अर्थ है अपने कर्त्तव्य को निस्वार्थ भाव से (निष्काम कर्म) और ईश्वर की इच्छा के प्रति पूर्णत: समर्पित रहते हुए न्यायसंगत रीति से निष्पादित करना । महाकाव्य के युद्ध के उत्तरजीवी यह पाते है कि लोक सम्मान और शक्ति किसी मायामय संघर्ष में खोखली विषय से अधिक कुछ नहीं है । यह कोई बहादुरी नहीं है, बल्कि ज्ञान है जो जीवन के रहस्य की कुंजी है । प्राचीन भारत के इन दोनों महाकाव्यों को लगभग सभी भारतीय भाषाओं में व्यावहारिक रूप से तैयार किया गया है, और

इन्होंने इस उप-महाद्वीप की सीमाओं को भी पार कर लिया है तथा विदेशों में लोकप्रिय हो गए है जहां इन्हें अन्तत: समग्र रूप से अपना लिया गया है, अनुकूल बना लिया है तथा इनका पुन: सृजन कर लिया है । ऐसा इसलिए संभव हो पाया है क्योंकि ये दोनों महाकाव्य अपने उन मूलभावों में समृद्ध हैं जिनकी एक वैश्विक परिसीमा है ।

पुराण

पुराण शब्द का अर्थ है – किसी पुराने का नवीनीकरण करना । लगभग सदैव इसका उल्लेख इतिहास के साथ किया जाता है। वेदों की सत्यता को स्पष्ट करने और इनकी व्याख्या करने के लिए पुराण लिखे गए थे । गूढ़, दार्शनिक और धार्मिक सचाइयों की व्याख्या लोकप्रिय दन्तकथाओं या पौराणिक कहानियों के माध्यम से की जाती है । मनुष्य के मन में कुछ भी तब तक अधिक विश्वास नहीं जगा सकता जब तक कि इसे एक घटित घटना के रूप में समझाया न जाए। अत: इतिहास का वृत्तान्त के साथ मिश्रण करने पर कहानी पर विश्वास कर पाना संभव हो जाता है । दो महाकाव्यों- 'रामायण' और 'महाभारत' के साथ-साथ, ये भी भारत के सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक इतिहास की कई कहानियों एवं किस्सों के उद्गम हैं ।

मुख्य पुराण दंतकथा और पौराणिक कथा के 18 विश्वकोशों के संग्रह हैं । जबकि शैली का पुरातन रूप चौथी या पांचवीं शताब्दी ईसा पूर्व में ही अस्तित्व में आ गया होगा, 18 महापुराणों के प्रसिद्ध नामों की खोज तृतीय शताब्दी ईसवी सन् के पूर्व नहीं हुई होगी । इन महापुराणों की अपूर्व लोकप्रियता में उपपुराणों या लघुपुराणों ने एक अन्य उप-शैली को जन्म दिया । इनकी संख्या भी 19 है ।

महापुराणों के पांच विषय हैं । ये है : सर्ग, सृष्टि का मूल सृजन (2) प्रतिसर्ग, विनाश और पुन: सृजन की आवधिक प्रक्रिया (3) मन्वंतर, अलग-अलग युगों का अंतरिक्षीय चक्र (4) सूर्य वंश और चंद्र वंश, ईश्वर और मनीषियों के सौर तथा चन्द्र वंशों का इतिहास (5) वंशानुचरित्र, राजाओं की वंशावलियां । इन पांच विषयों की इस आंतरिक अभिव्यक्ति के आसपास ही कोई भी पुराण अन्य विविध सामग्री की वृद्धि करता है यथा धार्मिक प्रथाओं, समारोहों बलिदानों से जुड़े विषय, विभिन्न जातियों के कर्त्तव्य, विभिन्न प्रकार के दान, मन्दिरों और प्रतिभाओं के निर्माण के ब्योरे और तीर्थ स्थानों का विवरण आदि। ये पुराण विभिन्न धर्मों और सामाजिक विश्वासों के लिए मिलन स्थल है, व्यक्तियों की महत्वपूर्ण आत्मिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं एवं आग्रहों की एक कड़ी है, और वैदिक आर्यों तथा गैर-आर्यों के विभिन्न समूहों के बीच एक समझ पर आधारित रहते हुए सदा चलते रहने वाले संश्लेषणों का एक अद्वितीय संग्रह हैं ।

शास्त्रीय संस्कृत साहित्य

संस्कृत भाषा वैदिक और शास्त्रीय रूपों में विभाजित है । महान महाकाव्य रामायण, महाभारत और पुराण शास्त्रीय युग का एक भाग है , लेकिन इनकी विशालता तथा महत्व के कारण इन पर अलग-अलग चर्चा की जाती है, और निस्संदेह ये काव्य (महाकाव्य), नाटक, गीतात्मक काव्य, प्रेमाख्यान, लोकप्रिय कहानियां, शिक्षात्मक किस्से कहानियों, सूक्तिबद्ध काव्य, व्याकरण के बारे में वैज्ञानिक साहित्य, चिकित्सा विधि, खगोल-विज्ञान, गणित आदि शामिल हैं । शास्त्रीय संस्कृत साहित्य समग्र रूप से पंथनिरपेक्ष रूप में है । शास्त्रीय युग के दौरान, संस्कृत के महानतम व्याकरणों में से एक पाणिनि के सख्त नियमों द्वारा भाषा विनियमित होती है ।

महाकाव्य के क्षेत्र में महानतम विभूति कालिदास (380 ईसवी सन् से 415 ईसवी सन् तक) थे । इन्होंने दो महान महाकाव्यों की रचना की, जो 'कुमार संभव'(कुमार का जन्म) और 'रघुवंश' (रघु का वंश) हैं । काव्य परम्परा में शैली, एक के बाद दूसरे आने वाले सुर जो मिल कर एक ही सुर उत्पन्न करते है, अहंकार, विवरण, आदि जैसे रूप पर अधिक ध्यान दिया जाता है और कहानी के विषय को पीछे धकेल दिया जाता है । एक ऐसी कविता का समग्र प्रयोजन जातीय मानदण्डों का अपमान किये बिना ही जीवन की धार्मिक और सांस्कृतिक शैली की क्षमता को प्रकट करना है । अन्य विशिष्ट कवियों यथा भारवि (550 ईसवी सन्) ने 'शिशुपाल वध' की रचना की । श्रीहर्ष और भट्टी जैसे अनेक अन्य कवि हैं, जिन्होंने उत्तम रचनाओं की रचना की ।

काव्य और यहां तक कि नाटक का मुख्य प्रयोजन पाठक या दर्शक को मनबहलाव या मनोरंजन (लोकरंजन) की पेशकश करना है और साथ ही उसकी भावनाओं को प्रेरित करना व अन्तत: उसे अपने जीवन के दर्शन को स्पष्ट करना है । अत: नाटक को रूढ़ शैली के अनुसार अंकित किया जाता है और यह काव्य तथा वर्णनात्मक गद्य से परिपूर्ण है । यह सांसारिकता के स्तर पर तथा साथ ही साथ गैर-सांसारिकता के एक अन्य स्तर पर चलता है । अत: संस्कृत नाटक की प्रतीकात्मकता यह बताती है कि मनुष्य की यात्रा तब पूरी होती है जब वह आसक्ति से गैर-आसक्ति की ओर, अस्थायीत्व के शास्त्वत्व की ओर अथवा प्रवाह से कालातीतत्व की ओर बढ़ता है । इसे संस्कृत नाटक में दर्शकों के मन में रस (नाटकीय अनुभव या सौन्दर्यपरक मनोभाव) जागृत करके हासिल किया जाता है । भरत (प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व से प्रथम शताब्दी ईसवी सन्) द्वारारचित नाट्यशास्त्र की प्रथम पुस्तक में अभिनय, नाट्यशाला, मुद्राओं मंच संचालन के बारे में सभी नियम और प्रदर्शन दिए गए हैं । कालिदास सबसे अधिक प्रतिष्ठित नाटककर हैं और इनके तीन नाटकों, यथा 'मालविकाग्निमित्र' (मालविका और अग्निमित्र), 'विक्रमोर्वशीयम्' (विक्रम और उर्वशी) तथा 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' (शंकुतला की पहचान) में प्रेम रस की, इसकी सभी संभव अभिव्यक्तियों के भीतर रहते हुए, अभिक्रिया अद्वितीय है । ये प्यार और सौन्दर्य के कवि हैं तथा इनका जीवन के अभिकथन में विश्वास है जिसकी प्रसन्नता शुद्ध, पवित्र तथा सदा विस्तारित होने वाले प्रेम में निहित है ।

शूद्रक द्वारा रचित 'मृच्छकटिकम्' (चिकनी मिट्टी का ठेला) एक असाधारण नाटक प्रस्तुत करता है । जिसमें निष्ठुर सत्यता के पुट देखने को मिलते हैं । पात्र समाज के सभी स्तरों से लिए गए हैं जिनमें चोर और जुआरी, दुर्जन तथा आलसी व्यक्ति, वेश्याएं और उनके सहयोगी, पुलिस के सिपाही, भिक्षुक एवं राजनीतिज्ञ शामिल है । अंक-3 में डकैती का एक रुचिकर वर्णन किया गया है जिसमें चोरी को एक नियमित कला माना जाता है । एक राजनैतिक क्रान्ति को दो प्रेमियों के निजी प्रेमसंबंध को परस्पर जोड़ने से नाटक में एक नवीन आकर्षण आ जाता है । भाषा (चौथी शताब्दी ईसा पूर्व से दूसरी शताब्दी ईसवी सन्) के तेरह नाटक, जिनके बारे में बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पता चला था, संस्कृत रंगमंच के सर्वाधिक मंचनीय नाटकों के रूप में स्वीकार किए जाते हैं । सबसे अधिक लोकप्रिय नाटक स्वप्न- वासवदत्ता (वासवदत्ता का स्वप्न है, जिसमें नाटककार ने चरित्र-चित्रण में अपनी कुशलता और षडयंत्र की उत्तम दलयोजना को प्रदर्शित किया है । एक अन्य महान नाटककार भवभूति (700 ईसवी सन्) अपने नाटक उत्तररामचरित (राम के जीवन का उत्तरार्द्ध) के लिए भली-भांति जाने जाते है । इसमें अति सुकुमारता के प्यार के अन्तिम अंक में एक नाटक शामिल है । ये अपने आलोचकों को यह कह कर प्रत्यक्ष रूप से फटकारने के लिए भी जाने जाते हैं कि मेरी कृति आपके लिए नहीं है और यह कि एक सदृश आत्मा निश्चय ही जन्म लेगी, समय की कोई सीमा नहीं है और धरती व्यापक है । ये उस अवधि के दौरान लिखे गए छह सौ से भी अधिक नाटकों में से सर्वोत्तम नाटक हैं ।

संस्कृत साहित्य अति गुणवत्तापूर्ण गीतात्मक काव्य से परिपूर्ण है । काव्य से परिपूर्ण है । काव्य में रचनात्मकता का संयोजन शामिल है, वास्तव में, भारतीय संस्कृति में कला और धर्म के बीच विभाजन यूरोप तथा चीन की तुलना में कम पैना प्रतीत होता है । 'मेघदूत' (बादल रूपी दूत) में कवि ऐसे दो प्रेमियों की कहानी सुनाने के लिए बादल को दूत बना देता है जो पृथक हो गए हैं । यह काफी कुछ प्यार की उच्च संकल्पना के अनुसार है जो अलग होने पर काले बादलों के बीच बिजली चमकने की भांति अंधकारमय दिखाई देती है । जयदेव (बारहवीं शताब्दी ईसवी सन्) संस्कृत काव्य का अन्तिम महान नाम है । जिसमें कृष्ण और राधा के बीच के प्यार के प्रत्येक चरण, अर्थात उत्कंठा, ईर्ष्या, आशा, निराशा, क्रोध, समाधान और उपभोग का नयनाभिराम गीतात्मक भाषा में वर्णन करने के लिए गीतात्मक काव्य 'गीतगोविन्द' (गोविन्द की प्रशंसा में गीत) की रचना की । ये गीत प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं जो मानव के प्यार का वर्णन करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं ।

पालि और प्राकृत में साहित्य

वैदिक युग के पश्चाभत, पालि और प्राकृत भारतीयों द्वारा बोली जाने वाली भाषाएं थीं। व्यापकतम दृष्टि से देखें तो प्राकृत ऐसी किसी भी भाषा को इंगित करती थी जो मानक भाषा संस्कृत से किसी रूप में निकली हो । पालि एक अप्रचलित प्राकृत है । वास्तव में, पालि विभिन्न उपभाषाओं का एक मिश्रण है । इन्हें बौद्ध और जैन मतों ने प्राचीन भारत में अपनी पवित्र भाषा के में अपनाया था। भगवान बुद्ध (500 ईसा पूर्व) ने प्रवचन देने के लिए पालि का प्रयोग किया । समस्त बौद्ध धर्म वैधानिक साहित्य पालि में हैं जिसमें त्रिपिटक शामिल है । प्रथम टोकरी विनय पिटक में बौद्ध मठवासियों के संबंध में मठवासीय नियम शामिल हैं । दूसरी टोकरी सुत्तस पिटक में बुद्ध के भाषणों और संवादों का एक संग्रह है । तीसरी टोकरी अभिधम्म पिटक नीतिशास्त्र , मनोविज्ञान या ज्ञान के सिद्धान्त से जुड़े विभिन्न विषयों का वर्णन करती है ।
जातक कथाएं गैर- धर्मवैधानिक बौद्ध साहित्य हैं जिनमें बुद्ध के पूर्व जन्मों (बोधिसत्त्व या होने वाले बुद्ध) से जुड़ी कहानियां हैं । ये कहानियां बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करती हैं तथा संस्कृत एवं पालि दोनों में उपलब्ध हैं । चूंकि जातक कथाओं का भारी मात्रा में विकास हुआ, इन्होंने लोकप्रिय कहानियों, प्राचीन पौराणिक कथाओं, धर्म संबंधी पुरानी परम्पराओं की कहानियों आदि का समावेश कर लिया । वास्तव में जातक भारतीय जनमानस की सांझी विरासत पर आधारित है । संस्कृत में बौद्ध साहित्य भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है जिसमें अश्वघोष (78 ईसवी सन्) द्वारा रचित महान महाकाव्य 'बुद्धचरित' शामिल है ।
बौद्ध कहानियों की ही भांति, जैन कथाएं भी सामान्य रूप से शिक्षात्मक स्वरूप की हैं । इन्हें प्राकृत के कुछ रूपों में लिखा गया है । जैन शब्द रुत जी (विजय प्राप्त करना) से लिया गया है और उन व्यक्तियों के धर्म को व्यक्त करता है जिन्होंने जीवन की लालसा पर विजय पा ली है । जैन सन्तों द्वारा रचित जैन धर्मवैधानिक साहित्यों, तथा साथ ही साथ हेमचन्द्र (1088 ईसवी सन्) द्वारा कोशकला तथा व्याकरण के बारे में बड़ी संख्या में रचनाएं भली-भांति ज्ञात हैं । नैतिक कहानियों और काव्य की दिशा में अभी बहुत कुछ तलाशना है । प्राकृत को हाल (300 ईसवी सन्) द्वारा रचित गाथासप्ताशती (700 श्लोंक) के लिए भली-भांति जाना जाता है जो रचनात्मक साहित्य का सर्वोत्तम उदाहरण है । यह इनकी अपनी 44 कविताओं के साथ (700 श्लोकों) का एक संकलन है । यहां यह ध्यान देना रुचिकर होगा कि पहाई, महावी, रीवा, रोहा और शशिप्पलहा जैसी कुछ कवयित्रियों को संग्रह में शामिल किया गया है । यहां तक कि जैन संतों द्वारा सुस्पष्ट धार्मिक व्यंजना से रचित प्राकृत की व्यापक कथा रत्यात्मक तत्वों से परिपूर्ण है । वासुदेवहिन्दी का लेखक जैन लेखकों के इस परिवर्तित दृष्टिकोण का श्रेय इस तथ्य को देता है कि धर्म की चीनी का लेप लगी दवा की भांति रचनात्मक कथांश द्वारा शिक्षा देना सरल होगा । प्राकृत काव्य की विशेषता इसका सूक्ष्म रूप है, आन्तरिक अर्थ (हियाली) इसकी आत्मा है । सिद्धराशि (906 ईसवी सन्) की उपमितिभव प्रपंच कथा की भांति जैन साहित्य भी संस्कमत में उपलब्ध है ।

प्रारम्भिक द्रविड़ साहित्य

भारतीय लोग वाक् के चार सुस्प ष्ट परिवारों से जुड़ी भाषाओं में बोलते है: आस्ट्रिक, द्रविड़, चीनी-तिब्बती और भारोपीय । भाषा के इन चार अलग-अलग समूहों के बावजूद, इन भाषा समूहों से होकर एक भारतीय विशेषता गुजरती है जो जीवन के मूल में निहित कुछ एकरूपता के आधारों में से एक का सृजन करती है जिसका जवाहर लाल नेहरू ने विविधता के बीच एकता के रूप में वर्णन किया है । द्रविड़ साहित्य में मुख्यत: चार भाषाएं शामिल हैं : तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम । इनमें से तमिल सबसे पुरानी भाषा है जिसने द्रविड़ चरित्र को सबसे अधिक बचाकर रखा है । कन्नड़ एक संस्कृलत भाषा के रूप में उतनी ही पुरानी है जितनी कि तमिल । इन सभी भाषाओं ने संस्कृत से कई शब्दों का आदान-प्रदान किया है, तमिल ही मात्र एक ऐसी आधुनिक भारतीय भाषा है, जो अपने एक शास्त्रीय विगत के साथ अभिज्ञेय दृष्टि से सतत है । प्रारम्भिक शास्त्रीय तमिल साहित्य संगम साहित्य के रूप में जाना जाता है जिसका अर्थ है आतृत्व् जो कवियों की प्रमुख रूप से दो शैलियों, यथा अहम् (प्रेम की व्यक्तिपरक कविताएं), और पूर्ण (वस्तुनिष्ठ ,लोककाव्य और वीर-रस प्रधान) को इंगित करती है । अहम् मात्र प्रेम के व्यक्तिपरक मनोभावों के बारे में है, प्रमुख रूप से राजाओं के पराक्रम तथा गौरव एवं अच्छाई और बुराई के बारे में है । संगम शास्त्रीय में 18 कृतियां (प्रेम के आठ संग्रह और दस लम्बी कविताएं) अभिव्यक्ति की अपनी प्रत्यक्षता के लिए भली-भांति जानी जाती हैं । इन्हें 473 कवियों ने लिखा था जिनमें से 30 महिलाएं थीं, जिनमें एक प्रसिद्ध कवयित्री अवय्यर थीं । 102 कविताओं के रचनाकारों की जानकारी नहीं है । इनमें से अधिकांश संग्रह तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के थे । इस अवधि के दौरान, तमिल की प्रारम्भिक कविताओं को समझने के लिए एक व्याकरण तोलकाप्पियम लिखा गया था । तोलकाप्पियम पांच भूदृश्यांकनों या प्यार की किस्मों को इंगित करता है और उनकी प्रतीकात्मक परम्पराओं की रूपरेखा प्रस्तुत करता है । आलोचक कहते है कि संगम साहित्य तमिल प्रतिभा का प्रारम्भिक साक्ष्य मात्र नहीं है । तमिल भाषियों ने अपने साहित्यिक प्रयास के सभी 2000 वर्षों में कुछ खास नहीं लिखा है । तिरुवल्लुवर द्वारा प्रसिद्ध तिरुककुलर, जिसकी रचना छठी शताब्दी ईसवी सन् में हुई थी, जो किसी को उत्तम जीवन व्यतीत करने की दिशा में नियमों की एक नियम-पुस्तिका है । यह जीवन के प्रति एक पंथनिरपेक्ष, नैतिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है, द्वि महाकाव्य शिलाप्पतिकारम् (पायल की कहानी) जिसके लेखक इलांगों-अडिगल हैं, और चत्तानार द्वारा रचित मणिमेखलइ (मणिमेखलइ की कहानी) 200-300 ईसवी सन् में किसी समय लिखे गए थे और ये इस युग में तमिल समाज का सजीव चित्रण प्रस्तुत करते हैं । ये मूल्यवान भण्डारगृह हैं और मान-सम्मान तथा महत्ता से परिपूर्ण महाकाव्य है जो जीवन के मूलभूत सद्गुणों पर बल देते हैं । मणिमेखलइ में बौद्ध सिद्धांत की व्यापक रूप से व्याख्या की गई है । यदि तमिल ब्राह्मणीय और बौद्ध ज्ञान पर विजय को उद्घाटित करता है तो कन्नड़ अपने प्राचीन चरण में जैन आधिपत्य को दर्शाता है । मलयालम ने संस्कृत भाषा के एक संबद्ध खजाने का अपने-आप में विलय कर लिया । नन्नतय्य (1100 ईसवी सन्) तेलुगु के पहले कवि थे । प्राचीन समय में तमिल और तेलुगु भाषाएं दूर-दूर तक फैली थीं ।

यदि किसी को प्राचीन तमिल साहित्य की एक अन्य प्रभावशाली विशेषता का अभिनिर्धारण करना है तो स्पष्टत: वैष्णव (विष्णु के बारे में) भक्ति (समर्पण) साहित्य की पसन्द होगी । भारतीय साहित्य में यह पता लगाने की दिशा में प्रयास किया गया है कि मनुष्य ईश्वरत्व को किस प्रकार से प्राप्त कर सकता है । वीरपूजा की एक प्रवृत्ति का राज मानवता के प्रति प्यार और सम्मान है । वैष्णव भक्ति के काव्य में भगवान हमारी पीड़ाओं तथा अशान्ति, हमारी प्रसन्नता एवं समृद्धि को सांझा करने के लिए मनुष्य के रूप में इस धरती पर अवतरित होते हैं । वैष्णव भक्ति का साहित्य एक अखिल भारतीय घटना- चक्र था जो छठी और सातवीं शताब्दी ईसवी सन् में दक्षिण भारत के तमिलभाषी क्षेत्र में भक्तिमय गीत लिखने वाले बारह (एक भगवान में तल्लीन) अलवार सन्तं- कवियों के साथ प्रारम्भ हुआ था । इन्होंने हिन्दू मत का पुनरुद्धार किया और बौद्ध तथा जैन विस्तार पर इनकी कुछ विशेषताओं को आत्मसात करते हुए रोक लगाई । अंडाल नाम की एक कवयित्री सहित अलवार कवियों का धर्म प्यार (भक्ति) के माध्यम से उपासना करना था और इस उपासना के उल्लास में वे सैकडों गीत गाया करते है जिनमें मनोभाव की गहराई तथा अभिव्यक्ति का परमानन्द दोनों शामिल थे । भगवान शिव की स्तुति में भक्तिमय गीत छठीं से आठवीं शताब्दी ईसवी सन् में तमिल के सन्त कवि नयनार ने भी लिखे थे । इसके भावात्मक भक्ति के काव्य के रूप में महत्त्व के अतिरिक्त, यह तमिल की शास्त्रीय सभ्यता की दुनिया में हमारा मार्गदर्शन करता है और तमिलों की जातीय-राष्ट्रीय जानकारी के बारे में हमें समग्र रूप से समझाता है । मध्यकालीन युग में भक्ति साहित्य लगभग सभी भारतीय भाषाओं में अखिल- भारतीय चेतना के रूप में फला-फूला ।

मध्यकालीन साहित्य

1000 ईसवी सन् के आस-पास प्राकृत में स्थानीय भिन्नताएं अधिकाधिक स्पष्ट होती चली गईं जिन्हें बाद में अपभ्रंश कहा जाने लगा था और इसके परिणामस्वरूप आधुनिक भारतीय भाषाओं ने आकार लिया तथा इनका जन्म हुआ । इन भाषाओं के क्षेत्रीय, भाषाई तथा जातीय वातावरण द्वारा अनुकूलन के परिणामस्वरूप इन्होंने भाषा संबंधी भिन्न विशेषताएं धारण कर लीं । संविधान में मान्यता-प्राप्त आधुनिक भारतीय भाषाएं जैसे कोंकणी, मराठी, सिंधी, गुजराती (पश्चिमी) मणिपुरी, बांग्ला, ओड़िया और असमी (पूर्वी); तमिल,तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ (दक्षिणी); और हिन्दी, उर्दू, कश्मीरी, डोगरी, पंजाबी, मैथिली, नेपाली और संस्कृत (उत्तरी) शामिल हैं । संविधान ने दो जनजातीय भाषाओं-बोडो और संथाली को भी मान्यता प्रदान की है । इन 22 भाषाओं में तमिल प्राचीनतम आधुनिक भारतीय भाषा है जिसने अपनी भाषाई विशेषता को बनाए रखा है और लगभग 2000 वर्षों में इसमें थोड़ा-सा ही परिवर्तन हुआ है । उर्दू आधुनिक भारतीय भाषाओं में सबसे युवा है तथा इसने अपना आकार चौदहवीं शताब्दी ईसवी सन् में लिया था और अपनी लिपि एक अरबी-फारसी मौलिकता से ली लेकिन अपनी शब्दावली फारसी और हिन्दी जैसे भारतीय-आर्य स्रोतों से भी ली थी । संस्कृत जो कि प्राचीनतम शास्त्रीय भाषा है, अभी काफी कुछ प्रयोग में है और भारत के संविधान ने इसे इसीलिए आधुनिक भारतीय भाषाओं की सूची में शामिल किया है ।

1000 से 1800 ईसवी सन् के बीच मध्यकालीन भारतीय साहित्य का सर्वाधिक शक्तिशाली रुझान भक्ति काव्य है जिसका देश की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं पर आधिपत्य है । यूरोप के अंधकारमय मध्यकाल से भिन्न, भारत के मध्यकाल ने असाधारण गुणवत्ता से परिपूर्ण भक्ति साहित्य ने एक अति समृद्ध परम्परा को जन्म दिया जो भारत के इतिहास के एक अंधकारमय युग की अंधविश्वासी धारणाओं का खण्डन करती है । भक्ति साहित्य मध्यकालीन युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है । यह प्रेम से भरा काव्य है, जिसमें भक्त अपने ईश्वर, कृष्ण या राम के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति करता है, जो महान भगवान विष्णु के दो प्रमुख अवतार हैं । इस प्यार को पति और पत्नी के बीच, अथवा प्रेमियों के बीच अथवा नौकर और मालिक के बीच अथवा माता-पिता और सन्तान के बीच के प्यार के रूप में चित्रित किया गया है । यह ईश्वरत्व को व्यक्तिगत बनाना है जिसका अर्थ है : आपके भीतर के ईश्वर का वास्तव में बोध होना, साथ ही जीवन में सौहार्द का होना जो मात्र प्यार ही ला सकता है । सांसारिक प्रेम काम है और ईश्वरीय प्रेम (रहस्यमय काम) है । भक्ति में प्रबल संकेत उल्लास तथा ईश्वर की समग्र पहचान है । यह धर्म के प्रति एक काव्यात्मक दृष्टिकोण है और काव्य के प्रति एक तापस्विक दृष्टिकोण है । यह संयोजनों का काव्य है- सांसारिकों का ईश्वर से संयोजन और परिणामस्वरूप प्यार के पंथनिरपेक्ष काव्य के पुराने रूप का सभी भाषाओं में एक नया अर्थ निकलने लगा । भक्ति काव्य में उन्नति के परिणामस्वरूप क्षेत्रीय भाषाओं ने भी उन्नति की । भाषा की संकल्पना ने संस्कृत की सर्वोत्कृष्ट परम्परा को नष्ट कर दिया और जनसाधारण की अधिक स्वीकार्य भाषा को स्वीकार कर लिया । कबीर कहते हैं कि संस्कृत एक निश्चल कूप के जल के समान है, भाषा बहते पानी की तरह होती है । सातवीं शताब्दी के एक शैव तमिल लेखक माणिक्कवाचकर को कविताओं की अपनी पुस्तक तिरुवाचकम् में ऐसा ही कुछ कहना है । भक्ति ने शताब्दियों पुरानी जाति प्रथा पर भी हमला किया है और स्वयं को मानवता की आराधना के प्रति अर्पित किया है क्योंकि भक्ति का नारा यह है कि हर मनुष्य में भगवान है । यह आन्दोलन वास्तव में गौण था क्योंकि इसके अधिकांश कवि तथाकथित 'निचली' जातियों से थे । भक्ति ब्रह्मविज्ञान से अलग है और किसी भी प्रकार के अवधारणात्मक पाण्डित्य के विरुद्ध है ।

तमिल में प्राचीन भक्ति काव्य की उस शक्ति को गति प्रदान की गई जिसे एक अखिल- भारतीय विकसित रूप समझा जा रहा था । तमिल के पश्चात्, दसवीं शताब्दी में पम्पा के महान राजदरबारी काव्यों की कन्नड़ में रचना की गई थी । कन्नड़ में भक्ति साहित्य, कृष्ण, राम और शिव सम्प्रदायों के विभिन्न सन्तों के वचन काफी प्रसिद्ध हैं । बसवण्णा कन्नड़ के एक प्रसिद्ध कवि थे, शिव के उपासक थे और एक महान समाज सुधारक थे । अल्लमा प्रभु (कन्नड़) ने धर्म के नाम पर महान काव्य का सृजन किया । कालक्रमिक, कन्नड़ की घनिष्ठ उत्तराधिकारिणी मराठी, भक्ति की अगली भाषा बनी । ज्ञानेश्वर (1275 ईसवीं सन्) मराठी के प्रथम और अग्रवर्ती कवि थे । उनकी किशोर-अवस्था (21 वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई थी) विट्ठल (विष्णु) भक्ति के संबंध में अपने कविसुलभ योगदान के लिए प्रसिद्ध हो गए थे । एकनाथ ने अपने लघु कविसुलभ वर्णनात्मक तथा भक्तिमय अभंग (एक साहित्यिक रूप) लिखे थे, और इनके पश्चात् तुकाराम (1608-1649 ईसवी सन्) के गीतों ने समूचे महाराष्ट्र को मंत्रमुग्ध कर दिया था । और इसके बाद बारहवीं शताब्दी में गुजराती आई । गुजराती के नरसिंह मेहता और प्रेमानन्द जैसे कवियों का वैष्णव कवियों की विशिष्ट मण्डली में प्रमुख स्थान है । इसके पश्चात् अनुक्रम इस प्रकार से है : कश्मीरी, बांग्ला, असमी, मणिपुरी, ओड़िया, मैथिली, ब्रज, अवधी (अन्तिम तीन भाषाएं छत्र भाषा हिन्दी के अधीन आती हैं) और भारत की अन्य भाषाएं । बांग्ला कवि चण्डीदास का इनकी कविताओं में सुबोधगम्यता और माधुर्य के लिए एक महान प्रतिभाशाली व्यक्ति के रूप में अभिनन्दन किया जाता है, इसी प्रकार, मैथिली में विद्यापति ने एक नई कविसुलभ भाषा का सृजन किया । कश्मीर की एक कवयित्री लालद्यद ने रहस्यमत भक्ति को एक नया आयाम प्रदान किया । बारहवीं शताब्दी के संस्कृत के एक गीतात्मक कवि जयदेव ने गोविन्द दास (सोलहवीं शताब्दी), बलराम दास और अन्यों जैसे बांग्ला के अधिसंख्य भक्ति कवियों को प्रभावित किया । एक महान बांग्ला सन्त चैतन्य (1486-1537) ने वैष्णवमत को एक धार्मिक तथा साहित्यिक आन्दोलन में परिवर्तित होने में सहायता की, इसे एक जीवित धर्म बनाया । जीव गोस्वामी सहित अनेक कवियों के लिए यह कभी न समाप्त होने वाला प्रेरणा का एक स्रोत बन गया । असमी कवि शंकरदेव (1449-1568) ने वैष्णवमत का प्रचार करने के लिए नाटकों (अंकिया-नट) और कीर्तन (भक्ति गीत) का प्रयोग किया और एक दिव्य-चरित्र बन गए । इस प्रकार, जगन्नाथ दास ओड़िया के एक दिव्य-चरित्र भक्ति कवि हैं जिन्होंने भागवत (कृष्ण की कहानी) की रचना की जिसने समस्त ओड़िशावासियों को मिला कर आत्मिक रूप से एक कर दिया और एक जीवित चेतना का सृजन किया । बाउल (पागल प्रेमी) के नाम से प्रसिद्ध ग्रामीण बंगाल के मुस्लिम और हिन्दू सन्त कवियों ने वैष्णव और सूफी (रहस्यवाद, जो ईश्वरीय भक्ति के सिद्धान्त को प्रस्तुत करता है) दोनों ही दर्शन-शास्त्रों के प्रभाव के अधीन ईश्वरीय लगाव के बारे में मौखिक काव्य का सृजन किया । दौलत काजी और सय्यद अलाउल (सत्रहवीं शताब्दी ईसवी सन्) जैसे मध्यकालीन मुस्लिम कवियों में इस्लाम तथा हिंदूमत की एक खुशहाल संस्कृति एवं धार्मिक संश्लेषण के साथ सूफी दर्शनशास्त्र पर आधारित वर्णनात्मक कविताओं का सृजन किया । वास्तव में, हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए भक्ति एक महान मंच बन गई, कबीर संत परम्परा (एक सर्वव्यापी ईश्वर अनेक ईश्वरों से भिन्न, विश्वास) के कवियों में अग्रगामी थे । कबीर का काव्य भक्ति, रहस्यवाद और सामाजिक सुधार के विभिन्न पहलुओं को छूता है ।

हिन्दी ने अपने भारतीय स्वरूप के कारण हिन्दी में साहित्य की रचना करने के लिए नामदेव (मराठी) और गुरु नानक (पंजाबी) को आकर्षित किया जो तब तक कई भाषाओं तथा उपभाषाओं के एक समूह में विकसित हो गई थी एवं एक छत्र भाषा के रूप में जानी जाती थी । हिन्दी की केन्द्रीयता और इसका व्यापक भौगोलिक क्षेत्र इसके कारण थे ।

सूरदास, तुलसीदास और मीरां बाई (पन्द्रहवीं से सोलहवीं शताब्दी ईसवी सन्) ने वैष्णवी गीतात्मकता के क्षेत्र में जो महान ऊंचाइयां हासिल की हैं उनकी ओर इशारा किया है । तुलसीदास (1532 ईसवी सन्) राम भक्ति के कवियों में श्रेष्ठतम थे, जिन्होंने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य रामचरित मानस (राम के आदर्शों का उल्लेख) की रचना की (वास्तव में, रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों का लोकभाषाओं में पुनर्जन्म हुआ था) । इन भाषाओं ने संस्कृत के महान महाकाव्यों को एक नया जीवन, एक नवीनीकृत प्रासंगिकता, और एक अर्थपूर्ण पुनर्जन्म प्रदान किया था और इन महाकाव्यों ने अपने काल में नई भाषाओं को वास्तविकता तथा शैली प्रदान की ।

तमिल में कम्बन, बांग्ला में कृत्तिवास ओझा, ओड़िया में सारला दास, मलयालम में एज़ूत्तच्चन, हिन्दी में तुलसीदास और तेलुगु में नन्नय भली-भांति जाने जाते हैं । मलिक मोहम्मद जायसी,रसखान, रहीम और अन्य मुस्लिम कवियों ने सूफी तथा वैष्णव काव्य की रचना की । मध्यकालीन साहित्य की एक विशेष विशिष्टता धार्मिक और सांस्कृतिक संश्लेषण प्रचुर मात्रा में पाते हैं । उपनिषदों में हिन्दत्व के बाद इस्लामी तत्व सबसे अधिक व्यापक है । प्रथम सिख गुरु ने कई भाषाओं में लिखा लेकिन अधिकाशत: पंजाबी में है । वे अन्तर्धर्म संचार के एक महान कवि थे । नानक कहते है सत्य सर्वोपरि है लेकिन सत्यता से भी ऊपर है सच्चा जीवन । गुरु नानक और अन्य सिख गुरुओं का संबंध संत परम्परा से है जो कि सर्वव्यापी एक ईश्वर में विश्वास रखता है न कि राम तथा कृष्ण की भांति कई देवी- देवताओं में । सिख गुरुओं के काव्य का संग्रह गुरु ग्रंथ साहिब में है जो कि एक बहुभाषीय पाठ है और जो कभी न बदलने वाले एक सच, ब्रह्माण्ड विधि (हुकुम), मनन (सतनाम), अनुकम्पा और सौहार्द (दया और संतोष) के बारे में बताता है । पंजाबी के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि बुल्ले शाह ने पंजाबी कैफी (पद्य-रूप) के माध्यम से सूफीमत को लोकप्रिय बनाया । कैफी बन्दों में एक छोटी-सी कविता है जिसके बाद टेक आता है और इसे नाटकीय रीति से गाया जाता है सिंधी के प्रसिद्ध कवि शाह लतीफ (1689 ईसवी सन्) ने अपनी पावन पुस्तक रिसालो में सूफी रहस्यवादी भक्ति को ईश्वरीय सत्य के रूप में स्पष्ट किया है ।

भक्ति में कवयित्रियां

उस अवधि के दौरान अलग-अलग भाषाओं की (महिला) लेखिकाओं के योगदान की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है । घोष, लोपामुद्रा, गार्गी, मैत्री, अपाला, रोमाषा, ब्रह्मवादिनी आदि महिला रचनाकारों ने वेदों के समय से ही (6000 ईसा पूर्व से 4000 ईसा पूर्व) संस्कृत साहित्य की मुख्यधारा में महिलाओं की छवि पर ध्यान केन्द्रित किया है । मुट्टा और उब्बीरी जैसी बौद्ध मठवासिनियों (छठी शताब्दी ईसा पूर्व) के गीतों ने और मेत्तिका ने पालि में पीछे छूट गए जीवन के लिए मनोभावों की यातना को अभिव्यक्त किया है । अन्दाल और अन्यों जैसी अलवार कवयित्रियों ने (छठी शताब्दी ईसवी सन्) ईश्वर के प्रति अपनी भक्ति को अभिव्यक्ति प्रदान की । (1320-1384 ईसवी सन् में) कश्मीर की मुस्लिम कवयित्रियों ललद्यद और हब्बा खातून ने भक्ति की सन्त परम्परा का निरूपण किया तथा वख (सूक्तियां) लिखीं जो आत्मिक अनुभव के अद्वितीय रत्न हैं । गुजराती, राजस्थानी और हिन्दी में मीरांबाई (इन्होंने तीन भाषाओं में लिखा), तमिल में अवय्यर और कन्नड़ में अक्कामहादेवी अपनी गीतात्मक गहनता तथा एकाग्र भावात्मक अभ्यर्थना के लिए भली-भांति जाने जाते हैं । इनका लेखन हमें उस समाज की सामाजिक स्थितियों और गृह में तथा समाज में महिलाओं की स्थिति के बारे में बताता है । इन सभी ने भक्ति से ओतप्रोत, छोटे गीत या कविताएं लिखीं । तात्त्विक गहराई समर्पण तथा उच्चतम सद्भाव की भावना वाले छोटे गीत या कविताएं लिखी । इनके रहस्यवाद और तात्त्विकता के पीछे एक ईश्वरीय उदासी है । इन्होंने जीवन से मिले प्रत्येक घाव को कविता में परिवर्तित कर दिया ।

मध्यकालीन साहित्य की अन्यप्रवृत्तियां

मध्यकालीन साहित्य का पहलू एकमात्र भक्ति ही नहीं था । 'किस्सा' और 'वार' के नाम से प्रसिद्ध पंजाबी की प्रेम गाथाएं वीरोचित काव्य मध्यकाल में पंजाबी के लोकप्रिय रूप थे । पंजाबी की सबसे अधिक प्रसिद्ध प्रेम गाथा हीर रांझा है जो मुस्लिम कवि वारिस शाह की एक अमर पुस्तक है । गांव के भाटों द्वारा मौखिक रूप से गायी गई पंजाबी की एक लोकप्रिय गाथा नादिरशाह का नजबत वार है । वार पंजाबी काव्य, संगीत और नाटक का सर्वाधिक लोकप्रिय रूप है, इन सभी का एक में समावेश किया गया है और यह प्रारम्भिक युग से ही प्रचलन में है । 1700 और 1800 ईसवी सन् के बीच, बिहारी लाल और केशव दास जैसे कई कवियों ने हिन्दी में श्रृंगार (रचनात्मक भावना) के पंथनिरपेक्ष काव्य का सृजन किया और बड़ी संख्या में अन्य कवियों ने काव्य की सम्पूर्ण श्रृंखला का विद्वत्तापूर्ण लेखा-जोखा पद्य के रूप में लिखा है ।

मध्यकालीन युग में एक भाषा के रूप में उर्दू अपने अस्तित्व में आई । भारत की मिश्रित संस्कृति के एक प्रारम्भिक वास्तुशिल्पकार और सूफी के एक महान कवि अमीर खुसरो (1253 ईसवी सन्) ने सर्वप्रथम फारसी और हिन्दी (तब इसे हिन्दवी कहते थे) में ऐसी मिश्रित कविता पर प्रयोग किया जो कि एक नई भाषा का आरंभ था जिसकी बाद में उर्दू के रूप में पहचान हुई । उर्दू ने अधिकांशत: काव्य में फारसी रूपों तथा छन्दों का पालन किया लेकिन कुछ शुद्ध भारतीय रूपों को भी अपनाया है : गज़ल (गीतात्मक दोहे), मरसिया (करुणागीत) और कसीदा (प्रशंसा में सम्बोधि-गीत) इरानी मूल के हैं । सौदा (1706-1781) मध्यकालीन युग के अन्त के कवियों में से थे और इन्होंने उर्दू काव्य को वह ओजस्विता और बहुमुखी प्रतिभा दी जिसे प्राप्त करने के लिए उनके पूर्ववर्ती कवि संघर्ष करते रहे थे । इनके पश्चात दर्द (1720-1785) और मीर तकी मीर (1722-1810) आए जिन्होंने उर्दू को एक परिपक्वता और विशिष्टता प्रदान की और इसे आधुनिक युग में ले आए ।

आधुनिक भारतीय साहित्य
(उन्नीसवीं शताब्दी भारतीय पुनरुज्जीवन)

लगभग सभी भारतीय भाषाओं में आधुनिक युग 1857 में भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रथम संघर्ष या इसके आसपास से प्रारम्भ होता है । उस समय जो कुछ भी लिखा गया था उसमें पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव, राजनैतिक चेतना का उदय और समाज में परिवर्तन को देखा जा सकता है । पश्चिमी दुनिया के सम्पर्क में आने के परिणामस्वरूप जहां भारत को एक ओर पश्चिमी सोच को स्वीकारना पड़ा तो वहीं दूसरी ओर इसे अस्वीकार भी करना पड़ा, जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत के प्राचीन वैभव और भारतीय चेतना को पुनर्जीवित करने के लिए प्रयत्न करना संभव हुआ । बड़ी संख्या के लेखकों ने एक राष्ट्रीय विचारधारा की अपनी तलाश में भारतीयकरण और पश्चिमीकरण के बीच संश्लेषण के विकल्प को चुना । उन्नीसवीं शताब्दी के भारत में पुनरुज्जीवन को लाने के लिए इन सभी दृष्टिकोणों को मिला दिया गया था । लेकिन यह पुनरुज्जीवन एक ऐसे देश में लाना था जो विदेशी शासकों के आधिपत्य में था । अत: यह वह पुनरुज्जीवन नहीं था जो चौदहवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच यूरोप में फैला था जहां वैज्ञानिक तर्क, वैयक्तिक स्वतंत्रता और मानवीयता प्रबल विशेषताएं थीं ।

भारतीय पुनरुज्जीवन ने भारतीय जीवनयात्रा, महत्व और वातावरण के संदर्भ में एक अलग ही आकार ले लिया था जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रवादी, सुधारवादी और पुनरुद्धारवादी सोच ने साहित्य में अपना मार्ग तलाश लिया था और इसने स्वयं को धीरे-धीरे एक अखिल-भारतीय आन्दोलन में परिवर्तित कर दिया था, देश के अलग-अलग भागों में राजा राममोहन राय (1772-1837), बंकिम चन्द्र चटर्जी, विवेकानन्द, माधव गोविन्द रानाडे, यू वी स्वामीनाथ अय्यर, गोपाल कृष्ण गोखले, के वी पंटुलु, नर्मदा शंकर लालशंकर दवे और कई अन्य नेताओं ने भी इसका नेतृत्व किया । वास्तव में, पुनरुज्जीवन के नेता लोगों के मन में राष्ट्र भक्ति को बैठाने, उनमें सामाजिक सुधार की इच्छा को तथा उनके गौरवमय अतीत के प्रति एक भावनात्मक लालसा को उत्पन्न करने में सफल रहे थे ।

सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में साहित्यिक गद्य के आविर्भाव और सेरमपुर, बंगाल में एक अंग्रेज विलियम केरी (1761-1834) के संरक्षण में मुद्रणालय का आगमन एक ऐसी सर्वाधिक महत्वपूर्ण साहित्यिक घटना थी जो साहित्य में क्रान्ति ले आई थी । यह सच है कि संस्कृत और फारसी में गद्य में प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध है, लेकिन प्रशासन और उच्चतर शिक्षा में प्रयोग करने के लिए आधुनिक भारतीय भाषाओं में गद्य की आवश्यकता के परिणामस्वरूप आधुनिक युग के प्रारम्भ में अलग-अलग भाषाओं में गद्य का आविर्भाव हुआ । 1800 से 1850 के बीच भारतीय भाषाओं में समाचार-पत्रों और पत्र-पत्रिकाओं का उदय गद्य का विकास करने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण था । सेरमपुर के मिशनरियों ने बंगाल पत्रकारिता एक जीविका के रूप में प्रारम्भ कर दी थी । एक सशक्त माध्यम के रूप में गद्य का आविर्भाव एक प्रकार का परिवर्तन लाया जो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के साथ-साथ घटित हुआ ।

राष्ट्रीयता का आविर्भाव

यह सच है कि भारतीय समाज में एक आधुनिक राष्ट्र की सोच ने भारत के पश्चिमी विचारों के साथ सम्पर्क के कारण अपनी जड़ जमायी थी लेकिन अतिशीघ्र बंकिम चन्द्र चटर्जी (बांग्ला लेखक 1838-1894) और अन्यों जैसे भारतीय लेखकों ने उपनिवेशी शासन पर आक्रमण करने के लिए राष्ट्रीयता की इस हाल में अपनाई गई संकल्पना का प्रयोग किया और इस प्रक्रिया में राष्ट्रीयता की अपनी एक छाप का सृजन किया जिसकी जड़ें अपने देश की मिट्टी में थी । बंकिम चन्द्र ने दुर्गेश नन्दिनी (1965) और आनन्द मठ (1882) जैसे कई ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की जिन्हें अखिल-भारतीय लोकप्रियता मिली और जिन्होंने राष्ट्रीयता और देश भक्ति को धर्म का एक भाग बना दिया । यह विकल्प सर्वमुक्तिवाद की एक सुस्पष्ट सभ्यतात्मक संकल्प था जिसे कइयों ने पश्चिमी उपनिवेशवाद को एक उत्तर के रूप में स्वीकार कर लिया था । पुनर्जागरणवाद और सुधारवाद राष्ट्रवाद की उभरती हुई एक नई सोच के स्वाभाविक उपसाध्य थे । आधुनिक भारतीय साहित्य का महानतम नाम रवीन्द्र नाथ टैगोर (बांग्ला 1861-1942) ने संघवाद को राष्ट्रीय विचारधारा की अपनी संकल्पना का एक महत्वपूर्ण अंग बनाया । इन्होंने कहा कि भारत की एकता विविधता में रही है और सदा रहेगी । भारत में इस परम्परा की नींव नानक, कबीर, चैतन्य और अन्यों जैसे सन्तों ने न केवल राजनीतिक स्तर पर बल्कि सामाजिक स्तर पर रखी थी, यही वह समाधान है- मतभेदों की अभिस्वीकृति के माध्यम से एकता-जिसे भारत विश्व के समक्ष प्रस्तुत करता है । इसके परिणामस्वरूप, भारत की राष्ट्रीयता महात्मा गांधी द्वारा प्रचारित सच्चाई तथा सहिष्णुता और पण्डित जवाहर लाल नेहरू द्वारा समर्थित गुटनिरपेक्षता में जा कर मिल जाती है जो भारत के अनेकत्व के प्रति चिन्ता को दर्शाता है । आधुनिक भारतीयता अनेकता, बहुभाषिकता, बहुसांस्कृतिकता, पंथनिरपेक्षता एवं राष्ट्र-राज्य संकल्पना पर आधारित है ।

राष्ट्रीयता, पुनर्जागरणवाद और सुधारवाद का साहित्य

विदेशी शासन के विरुद्ध किसी समुदाय के विरोध के रूप में अलग-अलग भाषाओं में स्वत: ही देशभक्ति के लेखों की रचना होने लगी थी । बांग्ला में रंगलाल, उर्दू में मिर्जा गालिब और हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने स्वयं को उस समय की देशभक्ति से परिपूर्ण स्वर के रूप में अभिव्यक्त किया । यह स्वर एक ओर तो उपनिवेशी शासन के विरुद्ध था तथा दूसरी ओर भारत के गुणगान के लिए था । इसके अतिरिक्त, मिर्जा गालिब (1797-1869) ने प्रेम के बारे में उर्दू में ग़ज़लें लिखीं जिनमें सामान्य कल्पना और रूपकालंकार शमिल था । इन्होंने जीवन को आनन्दमय अस्तित्व और एक अंधकारमय तथा कष्टकर रूप में भी स्वीकार किया । माइकेल मधुसूदन दत्त (1824-73) ने भारतीय भाषा में प्रथम आधुनिक महाकाव्य लिखा था और अतुकांत श्लोकों का देशीकरण किया था । सुब्रह्मण्य भारती (1882-1921) तमिल के एक महान देशभक्त कवि थे जिनके कारण तमिल में कविसुलभ परम्परा में एक क्रान्ति आई । मैथिलीशरण गुप्त (हिन्दी, 1886-1964), भाई वीर सिंह पंजाबी 1872-1957) और अन्य पौराणिक अथवा इतिहास के विषय लेकर महाकाव्य लिखने के लिए जाने जाते थे तथा इनका स्पष्ट प्रयोजन देशभक्त पाठक की आवश्यकताओं को पूरा करना था । उपन्यास का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक सुधार-अभिमुखी आन्दोलन

से सहयोजित है । पश्चिम से ली गई इस नई शैली की विशेषता भारतीय दर्शन में इसके अंगीकरण के बाद से ही विद्रोह की एक भावना है । सैमुअल पिल्लै द्वारा प्रथम तमिल उपन्यास प्रताप मुदलियार (1879), कृष्णम्मा चेट्टी द्वारा प्रथम तेलुगु उपन्यास श्रीरंग राजा चरित्र (1872), और चन्दू मेनन द्वारा प्रथम मलयालय उपन्यास इन्दु लेखा (1889) शिक्षाप्रद अभिप्रायों से तथा छुआछूत, जाति भेद, विधवाओं के पुनर्विवाह से इंकार जैसी अनिष्टकर कुप्रथाओं एवं परम्पराओं की पुन: परीक्षा करने के लिए लिखे गए थे । एक अंग्रेज महिला कैथरीन मुल्लेंस द्वारा बांग्ला उपन्यास 'फूलमणि ओ करुणार बिबरन' (1852) अथवा लाला श्रीनिवास दास द्वारा हिन्दी उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (1882) जैसे अन्य प्रथम उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के संबंध में अनुक्रिया तथा उच्चारण की सांझी प्रवृ का पता लगा सकते हैं ।

बंकिम चन्द्र चटर्जी (बांग्ला), हरि नारायण आप्टे (मराठी) और अन्यों द्वारा ऐतिहासिक उपन्यास भारत के स्वर्ण काल का वर्णन करने और यहां के लोगों के मन में राष्ट्रभक्ति को बैठाने के लिए लिखे गए थे । अतीत की बौद्धिक तथा प्राकृतिक सम्पदा का गुणगान करने के लिए उपन्यास सबसे अधिक उचित माध्यम पाए गए थे और इन्होंने भारतीयों को इनकी बाध्यताओं एवं अधिकारों का स्मरण कराया । वास्तव में, उन्नीसवीं शताब्दी में, साहित्य से राष्ट्रीय अभिज्ञान की सोच का अविर्भाव हुआ था और अधिकांश भारतीय लेखन ज्ञानोदय के स्वर में परिवर्तित हो गया था । इसने बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पहुंचने के समय तक भारत के लिए यथार्थ और तथ्यात्मक स्थिति को समझने का मार्ग प्रशस्त कर दिया था । इसी समय के दौरान टैगोर ने उपनिवेशी शासन, उपनिवेशी मानदण्ड और उपनिवेशी प्रधिकार को चुनौती देने तथा भारतीय राष्ट्रीयता को एक नया अर्थ प्रदान करने के लिए उपन्यास 'गोरा' (1910) लिखना प्रारम्भ किया था ।

भारतीय स्वच्छंदतावाद

भारतीय स्वच्छदंतावाद की प्रवृत्ति को उन तीन महान ताकतों ने प्रारम्भ किया था जिन्होंने भारतीय साहित्य की नियति को प्रभावित किया था । ये ताकतें थीं : श्री अरविंद (1872-1950) की मनुष्य में ईश्वर की तलाश, टैगोर की प्रकृति तथा मनुष्य में सौन्दर्य की खोज और महात्मा गांधी के सत्य एवं अहिंसा के अनुभव । श्री अरविंद ने अपने काव्य और दार्शनिक निबंध 'जीवन ही ईश्वर है' के माध्यम से प्रत्येक वस्तु में ईश्वरत्व के अन्तत: प्रकटन की संभावना को प्रस्तुत किया है । इन्होंने अधिकतर अंग्रेजी में लिखा है । टैगोर की सौन्दर्य के लिए खोज एक आत्मिक खोज थी जिसे इस अन्तिम अनुभूति में सफलता मिली कि मनुष्य की सेवा करना ईश्वर से सम्पर्क साधने का सर्वोत्तम माध्यम है । टैगोर प्रकृति और समूचे विश्व में व्याप्त एक सर्वोपरि सिद्धान्त से परिचित थे । यह सर्वोपरि सिद्धान्त या अज्ञात रहस्यात्मकता सुन्दर है क्योंकि यह ज्ञात के माध्यम से चमकता है और हमें मात्र अज्ञात में ही चिरस्थायी स्वतंत्रता मिलती है । कई आभाओं वाले प्रतिभाशाली व्यक्ति टैगोर ने उपन्यास, लघु कथाएं, निबंध और नाटक लिखे थे और इन्होंने नए प्रयोग करना कभी भी बन्द नहीं किया । इनकी बांग्ला में कविताओं के संग्रह गीतांजलि को 1913 में नोबल पुरस्कार मिला था । यह पुरस्कार मिलने के पश्चात् टैगोर की कविता ने भारत की अलग-अलग भाषाओं के लेखकों को स्वच्छंदतावादी कविता के युग को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रेरित किया । हिन्दी में स्वच्छंदतावादी कविता के युग को छायावाद, कन्नड़ में इसे नवोदय और ओड़िया में सबुज युग कहते हैं । जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानन्दन पन्त और महादेवी (हिन्दी), वल्लतोल, कुमारन आसन (मलयालम), कालिन्दी चरण पाणिग्रही (ओड़िया), बी एम श्रीकान्तय्या, पुट्टप्पा, बेन्द्रे (कन्नड़), विश्वनाथ सत्यनारायण (तेलुगु), उमाशंकर जोशी (गुजराती) और अन्य भाषाओं के कवियों ने अपनी कविता में रहस्यवादी तथा स्वच्छंदतावादी आत्मपरकता को उजागर किया । रवि किरण मण्डल के कवियों (मराठी के छह कवियों का एक समूह) ने प्रकृति में छिपी वास्तविकता को तलाशा । भारतीय स्वच्छंदवादी रहस्यवाद से भयभीत है-अंग्रेज स्वच्छंदतावाद से भिन्न, जो अनैतिकता के बंधनों को तोड़ना चाहता है, यूनानीवाद में खुशी तलाश रहा है । वास्तव में, आधुनिक युग की रोमानी प्रकृति भारतीय काव्य की परम्परा का अनुसरण करती है जिसमें रोमानीवाद ने वैदिक प्रतीकात्मकता के आधार पर अधिक और मूर्तिपूजा के आधार पर कम प्रकृति और मनुष्य के बीच वेदान्तिक (एक वास्तविकता का दर्शनशास्त्र) एकत्व के बारे में बताया है । उर्दू के महानतम कवि मोहम्मद इकबाल (1877-1898), जिसका स्थान गालिब के बाद है, ने प्रारम्भ में रोमानी-व-राष्ट्रीय चरण के अपने काव्य को अपनाया । इनका उर्दू का सर्वोत्तम संग्रह बंग-ए- दरा (1924) है । अखिल-इस्लामीवाद की इनकी खोज ने मानवता के प्रति इनकी समग्र चिन्ता में बाधा नहीं डाली ।

महात्मा गांधी का आगमन

मोहनदास कर्मचन्द गांधी (गुजराती, अंग्रेजी और हिन्दी / 1869-1948) और टैगोर ने भारतीय जीवन तथा साहित्य को प्रभावित किया एवं प्राय: ये एक दूसरे के पूरक हुआ करते थे । गांधीजी ने आम आदमी की भाषा बोली और ये परिपक्व लोगों के साथ थे । सत्यता और अहिंसा इनके हथियार थे । ये परम्परागत मूल्यों के पक्षधर थे और औद्योगिकीकरण के विरोधी थे । इन्होंने अति शीघ्र स्वयं को एक मध्यकालीन सन्त और एक समाज सुधारक के रूप में परिवर्तित कर लिया । टैगोर ने इन्हें महात्मा (सन्त) कहा । गांधी सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के काव्य और कथा साहित्य दोनों के विषय बन गए थे । ये शान्ति और आदर्शवाद के प्रचारक बन गए थे । वल्लतोल (मलयालम), सत्येन्द्रनाथ दत्ता (बांग्ला), काजी नजरुल इस्लाम (बांग्ला) और अकबर इलाहाबादी (उर्दू) ने गांधी को पश्चिमी सभ्यता को चुनौती के रूप में और एशियाई मूल्यों के गौरव के एक दृढ़कथन के रूप में स्वीकार किया ।

गांधीवादी वीरों ने उस समय के कथासाहित्य से विश्व को अभिभूत कर दिया था । तारा शंकर बंद्योपाध्याय (बांग्ला), प्रेमचन्द (हिन्दी) वी एस खाण्डेकर (मराठी), शरद चन्द्र चटर्जी (बांग्ला), लक्ष्मी नारायण (तेलुगु) ने गांधी के समर्थकों का नैतिक और धार्मिक प्रतिबद्धताओं से परिपूर्ण ग्रामीण सुधारकों अथवा सामाजिक कामगारों के रूप में सृजन किया । गांधी मिथक का सृजन लेखकों ने नहीं बल्कि लोगों ने किया था और लेखकों ने अपने काल के दौरान महान उद्बोधन के एक युग को चिह्नित करने के लिए इसका प्रभावी रूप से प्रयोग किया । शरद चन्द्र चटर्जी (1876-1938) बांग्ला के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकारों में से एक थे । इनकी लोकप्रियता इनकी पुस्तकों के विभिन्न भारतीय भाषाओं में उपलब्ध असंख्य अनुवादों के माध्यम से न केवल बांग्ला पाठकों के बीच ही नहीं बल्कि भारत के अन्य भागों के लोगों के बीच भी आज तक अक्षुण्ण बनी हुई है । पुरुष- महिला संबंध इनका प्रिय विषय था और ये महिलाओं को, उनकी पीड़ाओं को और उनके प्राय: अनकहे प्यार को चित्रित करने के लिए भली-भांति जाने जाते थे । ये गांधीवादी और समाजवादी दोनों ही थे ।

प्रेमचन्द (1880-1936) ने हिन्दी में उपन्यास लिखे । ये धरती के सच्चे सपूत थे और भारत की धरती से गहरे जुड़े हुए थे । ये भारतीय साहित्य में भारतीय कृषि- वर्ग के सबसे उत्कृष्ट साहित्यिक प्रतिनिधि थे । एक सच्चे गांधीवादी के रूप में, ये शोषकों के 'हृदय परिवर्तन' के आदर्शवादी सिद्धान्त में विश्वास करते थे लेकिन अपने महा कार्य गोदान (1936) में ये यथार्थवादी बन जाते हैं और भारत के ग्रामीण निर्धन लोगों की पीड़ा तथा संघर्ष को अभिलेखबद्ध करते हैं ।

प्रगतिशील साहित्य

भारतीय साहित्यिक दृश्यपरक में तीस के दशक में मार्क्सवाद का आगमन एक ऐसा घटनाचक्र है जिसे भारत कई अन्य देशों के साथ साझा करता है । गांधी और मार्क्स दोनों ही साम्राज्यवाद के विरोध तथा समाज के वंचित वर्गों के प्रति चिन्ता से प्रेरित हुए थे । प्रगतिशील लेखक संघ की मूल रूप से स्थापना 1936 में मुल्कराज आनन्द (अंग्रेजी) जैसे लन्दन में कुछ प्रवासी लेखकों ने की थी । तथापि, शीघ्र ही यह एक महान अखिल भारतीय आन्दोलन बन गया था जो समाज में गांधीवाद और मार्क्सवाद की सूक्ष्मदृष्टियों को पास-पास ले आया था । यह आन्दोलन विशेष रूप से उर्दू, पंजाबी, बांग्ला, तेलुगु और मलयालम में स्पष्ट था लेकिन इसका प्रभाव समस्त भारत में महसूस किया गया था । इसने प्रत्येक लेखक को समाज की वास्तविकता के साथ अपने संबंध की पुन: परीक्षा करने के लिए बाध्य कर दिया था । हिन्दी में छायावाद को प्रगतिवाद के नाम से प्रसिद्ध एक प्रगतिशील शैली ने चुनौती दी थी । नागार्जुन प्रगतिशील समूह के सर्वाधिक सशक्त और प्रसिद्ध हिन्दी कवि थे । बांग्ला कवि समर सेन और सुभाष मुखोपाध्याय ने अपनी कविता में एक नए सामाजिक-राजनीतिक दृष्टिकोण को जगह दी । फकीर मोहन सेनापति (ओड़िया, 1893-1918) सामाजिक यथार्थवाद के पहले भारतीय उपन्यासकार थे । अपनी धरती से गहरे जुड़े रहना, अभागे व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति और अभिव्यक्ति में ईमानदारी सेनापति के उपन्यासों की विशेषताएं हैं ।

माणिक वंद्योपाध्याय मार्क्सवाद के सबसे अधिक प्रसिद्ध बांग्ला उपन्यासकार थे । वैक्कम मोहम्मद बशीर, एस के पोट्टेक्काट और तकषि शिवशंकर पिल्लै जैसे मलयाली कथा-साहित्य लेखकों ने उच्च साहित्यिक मूल्य के प्रगतिशील कथा-साहित्य की रचना करके इतिहास रच दिया था । इन्होंने साधारण मनुष्य के जीवन का और उन मानव संबंधों का गवेषण करके अपने लेखन में नए विषयों को शामिल किया जिनको आर्थिक तथा सामाजिक असमानताओं ने प्रोत्साहित किया था । कन्नड़ के सर्वाधिक बहुमुखी कथा साहित्य लेखक शिवराम कारंत कभी भी आपने प्रारम्भिक गांधीवादी पाठों को नहीं भूले । श्रीश्री (तेलुगु) मार्क्सवादी थे लेकिन इन्होंने अपने जीवन के उत्तरकाल में आधुनिकता में रुचि दर्शायी । अब्दुल मलिक ने असमी में वैचारिक पूर्वाग्रह के साथ लिखा । प्रगतिशील साहित्य के महत्वपूर्ण मानदण्ड इस चरण में पंजाबी के अग्रणी लेखक सन्त सिंह शेखों ने स्थापित किए थे । प्रगतिशील लेखकों के आन्दोलन ने जोश मलीहाबादी और फैज अहमद फैज जैसे उर्दू के जाने-माने कवियों का ध्यान आकर्षित किया । मार्क्सवादी भावना से ओतप्रोत इन दोनों कवियों ने प्रेम की सदियों पुरानी प्रतीकात्मकता को एक राजनैतिक अर्थ प्रदान किया ।

आधुनिक रंगशाला का निर्माण

संस्कृत नाटकों ने दसवीं शताब्दी के पश्चात अपनी दिशा खो दी थी । इसने मानव अनुभव के पीछे के सत्य को समझने के लिए प्रतीक और कृत्य के माध्यम से कोई भी प्रयास नहीं किया । मध्यकालीन भारतीय साहित्य गौरवमय था, लेकिन यह भक्ति काव्य का एक युग था जो जीवन के पंथनिरपेक्ष निरूपण को मंच पर प्रस्तुत करने के संबंध में कुछ उदासीन था । मनोरंजन के इन रूपों के संबंध में इस्लामी वर्जना भी भारतीय रंगशाला में गिरावट के प्रति उत्तरदायी थी और इसीलिए नाटक गुमनामी की स्थिति में पहुंच गया था तथापि लोक नाटक दर्शकों का मनोरंजन करते रहे । आधुनिक युग के आगमन और पश्चिमी साहित्य के प्रभाव के परिणामस्वरूप, नाटक ने फिर करवट बदली और साहित्य के एक रूप के रूप में इसका विकास हुआ । 1850 के आसपास, पारसी रंगशाला ने भारतीय पौराणिक, इतिहास और दंतकथाओं पर आधारित नाटकों का मंचन प्रारम्भ किया गया । इन्होंने अपने चल दस्तों के साथ देश के अलग-अलग भागों की यात्रा की और अपने दर्शकों पर भारी प्रभाव छोड़ा । आगा हश्र (1880-1931) पारसी रंगशाला के एक महत्वपूर्ण नाटकार थे । लेकिन अधिकांश पारसी नाटक वाणिज्यिक और साधारण थे । वास्तव में, आधुनिक भारतीय रंगशाला ने अपने प्रारम्भिक अपरिपक्वता और सतहीपन के विरोध में प्रमुख रूप से

प्रतिक्रियास्वरूप विकास किया । भारतेन्दु हरिश्चंद्र (हिन्दी), गिरीश चन्द्र घोष (बांग्ला), द्विजेन्द्र लाल राय (बांग्ला), दीनबंधु मित्र (बांग्ला, 1829-74), रणछोड़भाई उदयराम (गुजराती,1837-1923), एम एम पिल्लै (तमिल), बलवन्त पांडुरंग किर्लोसकर (मराठी) (1843-25) और रवीन्द्र नाथ टैगोर ने उपनिवेशवाद, सामाजिक अन्याय और पश्चिमीकरण का विरोध करने के लिए नाटकों का सृजन करने हेतु हमारी लोक परम्परा की खोज की । जयशंकर प्रसाद (हिन्दी) और आद्य रंगाचार्य (कन्नड़) ने ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों की रचना की ताकि आदर्शवाद तथा उन अप्रिय वास्तविकताओं के बीच के संघर्ष को उजागर किया जा सके जिससे वे घिरे हुए थे । पी एस मुदलियार ने तमिल मंच को और एक नई दिशा प्रदान की लेकिन कुल मिला कर स्वतंत्रता से पहले के भारतीय साहित्य की स्थिति नाटक की दृष्टि से अच्छी नहीं थी । आधुनिक रंगशाला का निर्माण 1947 में भारत द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् ही पूर्ण हुआ ।

आधुनिकता की तलाश

भारत के संदर्भ में कला की एक महान कृति वह है जो परम्परा और वास्तविकता दोनों को अभिव्यक्त प्रदान करती हो । इसके परिणामस्वरूप, भारत के संदर्भ में आधुनिकता की संकल्पना का विकास अलग ही रूप में हुआ । कुछ नए का सृजन करने की आवश्यकता थी, यहां तक कि पश्चिमी आधुनिकतावाद की नकल भी उनकी अपनी वास्तविकताओं को समझाने की एक चुनौती के रूप में सामने आई । इस अवधि के लेखकों ने आधुनिकता के बारे में अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए अपने घोषणा-पत्र प्रस्तुत किए । एक नई भाषा का पता उनकी अपनी ऐतिहासिक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए लगाया गया था । रवीन्द्र नाथ टैगोर के पश्चात जीवनान्द दास (1899-1954) बांग्ला के सबसे अधिक महत्वपूर्ण कवि थे जिन्हें काव्य की पूरी समझ थी । ये चित्रणवादी थे और इन्होंने भाषा का प्रयोग मात्र सम्प्रेषण के लिए नहीं बल्कि वास्तविकता को समझने के लिए भी किया था । बांग्ला के कथा-साहित्य लेखक विभूति भूषण बंद्योपाध्याय (1899-1950) के नाटक 'पथेर पांचाली' (सड़क का आख्यान) पर सत्यजीत रे ने फिल्म का निर्माण किया जिसे अन्तर्राष्ट्रीय अभिनन्दन मिला । इस फिल्म में गांव के उस अनगढ़ और स्नेही जीवन को दिखाया गया है जो अब लुप्त होता जा रहा है । इन्होंने मनुष्य के प्रकृति के साथ दैनिक संबंध का अभिनिर्धारण करने की अपनी तलाश में स्वयं को कोई कम आधुनिक सिद्ध नहीं किया । तारा शंकर बंद्योपाध्याय (बांग्ला 1898-1971) अपने उपन्यासों में एक गांव या एक शहर में रहने वाली एक ऐसी पीढ़ी के स्पन्दनगान जीवन को प्रस्तुत करते है जहां समाज स्वयं ही नाटक बन जाता है । क्षेत्रीय जीवन, सामाजिक परिवर्तन और मानव व्यवहार को चित्रित करने में उन्हें अपार सफलता मिली । उमाशंकर जोशी (गुजराती) ने एक नया प्रयोगात्मक काव्य प्रारम्भ किया और आज के आधुनिक विश्व के भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व की बात की । अमृता प्रीतम (पंजाबी) में धरती से अपने संपर्क को गंवाए बिना ही एक आलौकिक वैभव के बारे में एक अति व्यक्तिगत काव्य की रचना की है । बी एस मर्ढेकर (मराठी,1909-56) में मनुष्य की सीमाओं और इनसे मिलने वाली अवश्यंभावी निराशा के बारे में बताते हुए प्रतिबिम्बों की सहायता से अपने काव्य में समकालीन वास्तविकता को प्रतिनियुक्ति किया है । प्रसिद्ध आधुनिक कन्नड़ कवि गोपाल कृष्ण अडिग (1918-92) ने अपने स्वयं के मुहावरे गढ़े और रहस्यवादी बन गए । ये अपने समय की व्यथा को भी प्रदर्शित करते हैं । व्यावहारिक रूप से सभी कवि मनुष्य की समाज में और इतिहास के बृहतर क्षेत्र में असहाय होने की भावना से उत्पन्न मनुष्य की निराशा को प्रतिबिम्बित करते है, भारतीय आधुनिकता की कुछ विशेषताएं पश्चिम की सीमाएं, मानदण्डों के विकार और मध्यम-वर्ग के मन में निराशा हैं तथापि मानवता की परम्परा भी बहुत कुछ जीवित है और बेहतर भविष्य की आशा से इंकार नहीं किया जा सकता है । पश्चिमी शब्दावली में, आधुनिकतावाद का अर्थ है स्थापित नियमों, परम्पराओं से विचलन लेकिन भारत में यह विद्यमान साहित्यिक प्रतिमानों के विकल्पों की तलाश करना है । इस आधुनिकता के किसी एकल संदर्भ बिन्दु का हम अभिनिर्धारण नहीं कर सकते, इसलिए यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भारतीय आधुनिकता एक पच्चीकारी के समान है ।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय साहित्यिक परिदृश्य

स्वतंत्रता के पश्चात, पचास के दशक में समाज के विघटन और भारत की विगत विरासत के साथ एक खण्डित संबंध के दबाव के कारण निराशा अधिक स्पष्ट हो गई थी । 1946 में भारत में स्वतंत्र होने से कुछ समय पूर्व और देश के विभाजन के पश्चात इस उप-महाद्वीप की स्मृति का सबसे बुरा हत्याकाण्ड देखा । उस समय भारत की राष्ट्रीयता शोक की राष्ट्रीयता बन गई थी । उस समय अधिकांश नए लेखकों ने पश्चिमी आधुनिकता के फार्मूलों पर आधारित एक भयानक कृत्रिम विश्व को चित्रित किया है । प्रयोगवादियों ने आन्तरिक वास्तविकता के संबंध में चिन्ता व्यक्त की है- बुद्धिवाद ने आधुनिकता के क्षेत्र में प्रवेश कर लिया था । भारत जैसी किसी संस्कृति में अतीत यूँही नहीं व्यतीत होता । यह वर्तमान के लिए उदाहरण उपलब्ध कराता रहता है लेकिन आधुनिकता संबंधी प्रयोगों के कारण लय खण्डित हो गई थी ।

अधिकांश भारतीय कवियों ने विदेशों की ओर देखा और टी.एस. इलियट, मलार्मे, यीट्स या बौदेलेयर को अपने स्रोत के रूप में स्वीकार किया । ऐसा करते समय इन्होंने टैगोर, भारती, कुमारन् आसन, श्री अरविंद और गांधी को नई दृष्टि से देखा । तब पचास के दशक के इन कवियों और 'अंधकारमय आधुनिकतावाद' के साठ के दशक को भी अपनी पहचान के संकट से गुजरना पड़ा । पहचान का यह विशिष्ट संकट, परम्परागत भारतीयता और पश्चिमी आधुनिकता के बीच विरोध को उस समय के भारत के प्रमुख भाषाई क्षेत्रों के लेखों में देखा जा सकता है । जो पश्चिमी आधुनिकता पर अडिग रहे उन्होंने स्वयं को सामान्य जनसाधारण से और उसकी वास्तविकता से पृथक कर लिया । प्रयोग की संकल्पना कभी-कभी नए मूल्यों की तलाश और मूलभूत संस्कृतियों या मूल्य के स्रोतों की परीक्षा की तलाश करने के रूप में पश्चिमी प्रभाव से स्वतंत्र रूप से विकसित हुई । स.ही. वात्स्यायन अज्ञेय (हिन्दी), नवकान्त बरुआ (असमी) बी.एस. मर्ढेकर (मराठी), हरभजन सिंह (पंजाबी), शरतचन्द्र मुक्तिबोध (मराठी) और वी के गोकाक (कन्नड़) का एक नए आन्दोलन को समृद्ध बनाते हुए एक विशिष्ट स्वर तथा दृष्टि के साथ आविर्भाव हुआ । इसके अतिरिक्त, सामाजिक यथार्थवाद के साहित्य की जड़ें अपनी मिट्टी में थीं और यह समकालिक साहित्य में एक प्रभावी प्रवृत्ति बन गई । यह तीस के दशक और चालीस के दशक के प्रगतिशील साहित्य का निर्वाहक था लेकिन इसका दृष्टिकोण निश्चित रूप से चरम केंद्रित था । मुक्तिबोध (हिन्दी), विष्णु दे (बांग्ला) या तेलुगु नग्न (दिगम्बर) कवियों ने जड़ से उखड़ी पहचान के बढ़ते हुए संकट के विरोध में कवियों के एकाकी संघर्ष को उद्घाटित किया । इन्होंने पीड़ा और संघर्ष के विषय पर राजनीतिक काव्य लिखे । यह एक नए तरह का काव्य था । डॉ. राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण व आचार्य नरेंद्र देव की समाजवादी विचारधारा से भारतीय साहित्य में नई दृष्टि आयी । वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य, यू.आर. अनंतमूर्ति ने श्रेष्ठ रचनाएं दी । हिन्दी में 'परिमल' साहित्यिक आंदोलन प्रारंभ हुआ । विजयदेव नारायण साही, धर्मवीर भारती, रघुवंश, केशव चंद्र वर्मा, विपिन अग्रवाल, जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी आदि ने साहित्य की धारा बदल दी । साहित्य ने अब पददलितों और शोषितों को अपना लिया था । कन्नड़ विद्रोही एक वर्ण- समाज में हिंसा के रूपों को लेकर चिन्तित थे । धूमिल (हिन्दी) जैसे व्यक्तियों ने सामाजिक यथार्थवाद की एक श्रृंखला दिखाई । ओ.एन.वी. कुरुप (मलयालम) ने सामाजिक अन्याय के प्रति अपने क्रोध की तेजी को अपनी गीतात्मकता में शामिल किया । इसके पश्चात सत्तर के दशक का नक्सली आन्दोलन आया और इसके साथ की आधुनिकता के बाद की स्थिति ने भारत के साहित्यिक दृश्य में प्रवेश किया । भारत के संदर्भ में, आधुनिकता के बाद की स्थिति मीडिया-प्रचालित और बाजार-नियंत्रित वास्तविकता की प्रतिक्रिया के रूप में आई थी और यह स्थति अपने साथ विरोध एवं संघर्ष भी लेकर आई ।

दलित साहित्य

आधुनिकतावाद युग के बाद की स्थिति की सबसे अधिक महत्वपूर्ण विशेषता परित्यक्तों द्वारा रचित साहित्य का एक प्रमुख साहित्यिक ताकत के रूप में आविर्भाव होना है । दलित शब्द का अर्थ है पददलित । सामाजिक दृष्टि से शोषित व्यक्तियों से जुड़ा साहित्य और अल्पविकसित व्यक्तियों की सामाजिक-राजनीतिक स्थिति का समर्थन करने वाला साहित्य इस नाम से जाना जाता है । साहित्य में दलित आन्दोलन डॉ. बी आर अम्बेडकर के नेतृत्व में मराठी, गुजराती और कन्नड़ लेखकों ने प्रारम्भ किया था । यह प्रगतिशील साहित्य के पददलितों के निकट आने के परिणामस्वरूप प्रकाश में आया । यह ब्राह्मणीय मूल्यों का समर्थन करने वाले ऊंची जाति के साहित्य का विरोध करने के लिए लड़ाकू साहित्य है । मराठी कवि नामदेव ढसाल या नारायण सुर्वे अथवा दया पवार या लक्ष्मण गायकवाड़ जैसे उपन्यासकारों ने अपने लेखन में एक समुदाय की वेदना को दर्शाया है और समाज में पददलितों और परित्यक्तों के लिए एक न्यायसंगत तथा यथार्थवादी भविष्य को आकार देने की मांग की है । महादेव देवनूर (कन्नड़) और जोसफ मैक्वान (गुजराती) ने अपने उपन्यासों में हिंसा, विरोध तथा शोषण के अनुभव के बारे में बताया है । यह विद्यमान साहित्यिक सिद्धांतों, भाव और प्रसंग को चुनौती देता और एक साहित्यिक आन्दोलन की समस्त प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण करता है । यह एक वैकल्पिक सौन्दर्यशास्त्र का सृजन करता है और साहित्य की भाषायी तथा सामान्य संभावनाओं का विस्तार करता है, दलित साहित्य, साहित्य में अनुभव की एक नई दुनिया से परिचय कराता है, अभिव्यक्ति की श्रृंखला का विस्तार करता है और परित्यक्तों तथा पद-दलित दलितों की भाषाई अंत:शक्ति का उपयोग करता है ।

पौराणिकता का प्रयोग

शहरी और ग्रामीण जानकारी के बीच अतीत और वर्तमान के बीच की खाई को पाटने के लिए आधुनिक कविता के बाद के दृश्य में जो एक अन्य प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर है वह आधुनिक दशा को प्रस्तुत करने के लिए पौराणिकता का प्रयोग करना है । वास्तव में पौराणिक विचार निरन्तरता और परिवर्तन के बीच की खाई को बांटने का प्रयास हैं और इस प्रकार से 'समग्र साहित्य' के विचार का प्रामाणीकरण किया जाता हैं । समान पौराणिक स्थितियों का प्रयोग करके आज की उस अवस्थिति को एक व्यापक आयाम प्रदान किया जाता है जिसमें आज का मानव रह रहा है। पौराणिक अतीत मनुष्य के ज्ञानातीत से संबंध की पुष्टि करता है । यह एक मूल्य संरचना है । वह वर्तमान के लिए अतीत की पुन: खोज करता है, और भविष्य के लिए एक अनुकूलन है । अज्ञेय (हिन्दी) के काव्य में हम इस अनुभूति के संबंध में एक बदलाव पाते हैं कि किसी भी व्यक्ति का अस्तित्व एक बृहत् वास्तविकता का एक साधारण-सा भाग मात्र है । सीताकांत महापात्र ने ओडिया साहित्य में नई दृष्टि दी । रमाकान्त रथ (ओडिया) और सीताकान्त महापात्र (ओडिया) पौराणिकता या लोक दन्तकथाओं का प्रयोग परंपरा से आधुनिकता के संबंधों पर विचार करने के लिए करते हैं । हमें लेखकों द्वारा अपनी जड़ों को तलाशने का प्रयास करने, अपने प्राचीन स्थलों का पता लगाने और गत कई दशकों के दौरान अति आधुनिकतावाद की अवधि में जनस्पष्ट हुए अनुभव के समस्त क्षेत्रों की छानबीन करने के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। समकालिक भारतीय काव्य में सौम्य होने के एक भाव के साथ-साथ विडम्बना का दृष्टिकोण, रचनात्मक प्रतिमाओं जैसे पौराणिक अनुक्रमों का निरन्तर प्रयोग और औचित्य तथा शाश्वत्व की समस्याओं के लगातार उलझने में देखने को मिलते हैं । गिरीश कर्नाड, कंबार (कन्नड़), मोहन राकेश, मणि मधुकर (हिंदी), जीपी सतीश आलेकर (मराठी) मनोज मित्र और बादल सरकार (बांग्ला) जैसे नाटककार भारत के अद्यतन अस्तित्व को समझने के लिए मिथकों, लोक दंतकथाओं, परम्परा का प्रयोग करते रहे हैं ।

यूरोप- केन्द्रस्थ आधुनिकतावाद ने विचलन के एक नवीन सामाजिक- सांस्कृतिक पौराणिकी संहिता का सृजन किया है जिसका प्रयोग कुँवर नारायण (हिन्दी), दिलीप चित्रे (मराठी), शंख घोष (बांग्ला) के काव्य और भैरप्पा (कन्नड़), प्रपंचम (तमिल) और अन्यों के उपन्यासों में किया गया है। अब मिथक को साहित्यिक पाठ के अर्थपूर्ण उप-पाठ के रूप में स्वीकार किया जाता है । यू. आर. अनन्त मूर्ति (कन्नड़) अपनी कहानियों में आज के परिवर्तित प्रसंग में कुछ परम्परागत मूल्यों की प्रासंगिकता का पता लगाते रहे हैं । इनका संस्कार नामक उपन्यास एक विश्वस्तरीय शास्त्रीय कृति है जो मनुष्य के जीवन की मागों की

अत्यावश्यकता की दृष्टि से मनुष्य के आत्मिक संघर्ष को प्रस्तुत करता है। इन लेखकों ने भविष्य की ओर देखते हुए जड़ों के गौरव को लौटा कर संस्कृति के तत्वों को एक रचनात्मक रीति द्वारा दुबारा जानने, पुन: खोजने तथा पुन: परिभाषित करने का एक प्रयास किया है ।

समकालीन साहित्य

उत्तर आधुनिक युग में सहज रहने, भारतीय रहने, आम आदमी के निकट रहने, सामाजिक दृष्टि से जागरूक रहने का प्रयास किया जा रहा है। एन. प्रभाकरन, पी. सुरेन्द्रन जैसे मलयालम के तृतीय पीढ़ी के लेखक आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता तक का रेंज रखते हैं । मानव कहानियों को बिना किसी सुस्पष्ट सामाजिक संदेश या दार्शनिक आडम्बर के सुनाने मात्र से ही संतुष्ट हो जाते हैं । विजयदान देथा (राजस्थानी) और सुरेन्द्र प्रकाश (उर्दू) बिना किसी सैद्धांतिक पूर्वाग्रह के कहानियां लिखते रहे हैं । अब यह स्थापित हो गया है कि सरल पाठ में भी मूल पाठ विषयक अतिरिक्त संरचना प्रस्तुत की जा सकती है । यहां तक कि कविता में सरलता से अभिव्यक्त किए जाने वाले सांस्कृतिक संदर्भ भी भिन्न अर्थगत-मूल्य के हो सकते हैं ।

अब यह सिद्ध हो गया है कि साधारण पाठ जटिल इतर-पाठ की संरचनाएं प्रस्तुत कर सकता है। यहां तक कि काव्य में साधारण रूप से दिए गए सांस्कृतिक संदर्भों के अलग- अलग अर्थगत मूल्य हो सकते हैं । जयमोहन (तमिल) देवेश राय (बांग्ला) और रेणु, शिवप्रसाद सिंह (हिन्दी) द्वारा रचित समकालिक भारतीय उपन्यास, जो कि विभिन्न उपेक्षित क्षेत्रों के बारे में तथा वहां बोली जाने वाली उप-भाषा में हैं, समग्र भारत का एक मिश्रित दृश्य प्रस्तुत करते है जो नए अनुभवों के साथ स्पंदित हैं और पुराने मूल्यों से जुड़े रहने के लिए संघर्षरत हैं । उत्तर आधुनिकता की इस अवधि में ये उपन्यास अस्तित्व की रीतियों की समस्याओं को नाटक का रूप देते हैं । गांवों में वास्तविक भारत की झलक देते हैं और यह भी पर्याप्त रूप से स्पष्ट करते हैं कि यह देश हिन्दू, मुस्लिम, सिख और ईसाई का देश है । इसकी संस्कृति एक मिश्रित संस्कृति है। इन आंचलिक उपन्यासकारों ने पश्चिम द्वारा सृजित इस मिथक को नष्ट कर दिया कि भारतीयता मात्र भाग्यवाद है या यह कि भारतीयता की पहचान मैत्री तथा व्यवस्था से करनी होगी और भारतीय दृष्टि अपनी स्वयं की वास्तविकता को समझ नहीं सकती ।

बड़ी संख्या में समकालीन उपन्यासकारों ने जो प्रमुख तनाव महसूस किया वह ग्रामीण और परम्परागत रूप से एक शहरी तथा आधुनिकतावाद से बाद की स्थिति तक का परिवर्तन है जिसे या तो पीछे छूट गए गांव के लिए एक रोमानी विरह के माध्यम से या इसकी समस्त काम-भावना, वीभत्सता, हत्या तथा क्रूरता सहित शहर के भय एवं घृणा के माध्यम से व्यक्त किया गया है । वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य (असमी), सुनील गंगोपाध्याय (बांग्ला), पन्नालाल पटेल (गुजराती), मन्नू भंडारी (हिन्दी) नयनतारा सहगल (अंग्रेजी), वी बेडेकर (मराठी) समरेश बसु (बांग्ला) और अन्यों ने अपनी ग्रामीण-शहरी संवेदनशीलता के साथ भारतीयता के अनुभव को समग्र रूप से प्रस्तुत किया है । कुछ कथा-साहित्य लेखक प्रतीकों, प्रतिमाओं और अन्य काव्यात्मक साधनों की सहायता से जीवन के किसी एक क्षण विशेष को बढ़ा-चढ़ा कर बताते हैं । निर्मल वर्मा (हिन्दी), मणि माणिक्यम् (तेलुगु) और कई अन्यों ने इस क्षेत्र में अपनी उपस्थिति का अहसास कराया है । उदारवादी महिलाओं के लेखन का सभी भारतीय भाषाओं में प्रखर अविर्भाव हुआ है जिसने पुरुष-प्रधान सामाजिक व्यवस्था को समाप्त करने का प्रयास किया है कमलादास (मलयालम, अंग्रेजी), कृष्णा सोबती (हिन्दी), आशापूर्णा देवी (बांग्ला), राजम कृष्णन (तमिल) और अन्यों जैसी महिला लेखकों ने अलग किस्म के मिथकों तथा प्रति-रूपकालंकार को आगे बढ़ाया ।

विजय देव नारायण साही ने हिंदी में आलोचना की एक नई धारा दी । 'लघुमानव' के सौंदर्य को उन्होंने साहित्य का सौंदर्य बनाया तथा अपनी कविताओं के माध्यम से हिंदी में चली आ रही पारंपरिक भाषा व कथ्य को बदल दिया ।

भारत में आज का संकट औचित्य और वैश्विकता के बीच के संघर्ष के बारे में है जिसके परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में लेखक परम्परागत प्रणाली के भीतर रहते हुए समस्या का समाधान करने के लिए एक प्रवृति का अभिनिर्धारण कर रहे हैं जो आधुनिकीकरण की एक ऐसी स्वदेशी प्रक्रिया जनित करने तथा उसे बनाए रखने के लिए पर्याप्त रूप से प्रभावशाली है जिसे बाह्य समाधानों की आवश्यकता नहीं पड़ती और जो स्वदेशी आवश्यकताओं तथा दृष्टिकोणों के अनुसार है लेकिन लेखकों की नई फसल जीवन में अपने आस-पास के सत्य को जिस रूप में देखती है उससे वह चिन्तित है । यहां तक कि भारत के अंग्रेजी लेखकों के लिए अंग्रेजी अब कोई उपनिवेशी भाषा नहीं है । अमिताभ घोष, शशि थरूर, विक्रम सेठ, उपमन्यु चैटर्जी, अरुंधती राय और अन्य भारतीयता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के अभाव को दर्शाए बिना इसका प्रयोग कर रहे हैं। वे लेखक जो अपनी विरासत, जटिलता और अद्वितीयता के बारे में सजग हैं, अपने लेखन में परम्परा और वास्तविकता दोनों को व्यक्त करते हैं ।

हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कोई भी एकल भारतीय साहित्य स्वयं में पूर्ण नहीं है और इसलिए किसी एकल भाषा के प्रसंग के भीतर इसका कोई भी अध्ययन इसके साथ न्याय नहीं कर सकता है, यहां तक कि इसके लेखकों के साथ भी, जो कि सामान्य वातावरण में बड़े होते हैं। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि भारतीय साहित्य कई भाषाओं में लिखा जाता है, लेकिन इनके बीच एक महत्वपूर्ण, जीवंत संबंध है । ऐसा बहुभाषी धाराप्रवाहिकता, अन्तर-भाषा- अनुवाद, परस्पर सांझे विषयों, चिन्ताओं, दिशा और आंदोलनों के कारण हुआ है । ये सब मिल कर भारतीय साहित्य के आदर्शों को आज भी सक्रिय रूप से जीवित रखे हुए हैं ।

प्रकाशनाधिकार © सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र
15 ए, सैक्टर-7, द्वारका, नई दिल्ली-110075
संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार
दूरभाष नं0 (011) 25088638, 25309300, फैक्स 91-11-25088637, ई-मेल dir.ccrt@nic.in